E-ISSN: 2706-8927
P-ISSN: 2706-8919
www.allstudyjournal.com
IJAAS 2021; 3(2): 202-206
Received: 17-02-2021
Accepted: 19-03-2021

रजनी
एसोसिएट प्रोफेसर
डॉ. भीमराव अंबेडकर कॉलेज
दिल्ली-विश्वविद्यालय,
दिल्ली, भारत

Corresponding Author:
रजनी
एसोसिएट प्रोफेसर
डॉ. भीमराव अंबेडकर कॉलेज
दिल्ली-विश्वविद्यालय,
दिल्ली, भारत

जल-संकट पर केदारनाथ सिंह की 'पानी की प्रार्थना'

रजनी

प्रस्तावना

तीसरा सप्तक से हिंदी कविता में दस्तक देने वाले केदारनाथ सिंह अपनी वस्तु और शिल्प के कारण आधुनिक हिंदी कवियों में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। केदारनाथ सिंह का लेखन अपनी जमीन और अपने परिवेश से जुड़ा होने के कारण पाठक के ह्रदय को निरंतर स्पंदित करता रहा है। वह आधुनिकता की आंधी में परंपरा और अतीत की जड़ों के उन मजबूत तंतुओं की तलाश करता है जो हमारी पहचान को उड़ने-बिखरने नहीं देते।

भारत की श्रम प्रधान ग्रामीण संस्कृति, उससे जुड़े पर्व -उत्सव,कृषक जीवन, खेत-खलिहान, नदी, वन-उपवन, पशु-पक्षी केदारनाथ सिंह की कविताओं में जीवंत होकर जीवन के सौंदर्य के लिए अपनी अनिवार्यता और आवश्यकता को सिद्ध करते हैं । इनका अपने सहज, स्वाभाविक रूप में होना ही जीवन को सार्थकता प्रदान करता है ।

केदारनाथ सिंह के सभी काव्य संग्रहों : अभी बिल्कुल अभी (1960), जमीन पक रही है (1980), यहां से देखो (1983), अकाल में सारस (1988), उत्तर कबीर और अन्य कविताएं (1995), बाघ (1996), ताल्सताय और साइकिल (2005), सृष्टि पर पहरा (2014) की अधिकांश कविताओं की संवेदना मनुष्य के अस्तित्व और उसकी संपूर्णता की तलाश से जुड़ी है। इस तलाश में मिलती है _ संपूर्ण प्रकृति, उसके उपादान, सृष्टि के नियामक पंचतत्त्व(पृथ्वी, अग्नि, जल, वायु, आकाश) जिनके अस्तित्व पर ही मनुष्य का अस्तित्व निर्भर है, जो पुकार पुकार कर कहते हैं कि यदि इनमें से किसी एक के साथ भी खिलवाड़ हुआ तो मनुष्य के खुद के वजूद पर ही सवाल खड़े हो जाएंगे। इसीलिए केदारनाथ सिंह प्रकृति को उसकी प्रकृत अवस्था में रखने के हिमायती हैं। उसी में वह जीवन का संपूर्ण सौंदर्य देखते हैं। मनुष्य का भी उसकी अपनी बोली, वेश, संस्कृति के साथ सहज, स्वाभाविक, सामाजिक रूप में रहना ही उन्हें स्वीकार्य है। यही कारण है कि उनकी

कविताओं में सह-अस्तित्व का मानवतावादी संदेश निरंतर अभिव्यंजित होता रहता है।

केदारनाथ सिंह की कविता एहसास की कविता है। वह हर उस व्यक्ति, वस्तु, प्राणी के होने का एहसास कराती है जो हमसे किसी न किसी रूप में जुड़ा हुआ है। स्मृति के झरोखे में आने पर उसकी लघुता भी महत्ता में बदल जाती है, उसकी साधारणता विशिष्टता में परिवर्तित हो जाती है। इसी एहसास से लबरेज कवि अपने परिवेश और उसके पर्यावरण के प्रति कहीं अधिक संवेदनशील, सचेत और सतर्क है। दिल्ली में रहते हुए कवि शहरी और ग्रामीण जीवन, आधुनिकता और परंपरा के बीच की गहरी खाई को एक गंभीर खतरे के रूप में देखता है कि यदि इसे शीघ्र नहीं पाटा गया तो इसका दुष्परिणाम किसी एक को नहीं अपितु पूरी धरती को भुगतना पड़ेगा। इसी चिंता से उभरे चिंतन और सरोकारों के चलते केदारनाथ सिंह की कलम ने पानी, नदी का स्मारक, जब वर्षा शुरू होती है, नदी, एक और अकाल, अकाल में सारस, ओ मेरी उदास पृथ्वी, काली मिट्टी, एक छोटा सा अनुरोध, बाघ, ठीकरा, झरबेरिया, भूतहा बाग, दिल्ली में बबूल, बुद्ध की मुस्कान, चीटियों की रुलाई, अपनी खबर, अमरूद जैसी प्रकृति और पर्यावरण विषयक अनेक कविताओ की सर्जना की। 'पानी की प्रार्थना' जो उनके काव्य संग्रह 'ताल्सताय और साइकिल' में संकलित है उन्हीं में से एक है।

भूमंडलीकरण, निजीकरण, बाजारवाद, औद्योगीकरण और शहरीकरण की आंधी से उपजे जल, जंगल, जमीन के प्रश्नों के बीच कवि 'पानी की प्रार्थना' प्रस्तुत करता है जिसमें पानी की बेबसी, लाचारी, असहायता का मार्मिक और व्यंग्यपूर्ण चित्रण किया गया है। पानी अपनी फरियाद लेकर परमपिता परमात्मा की शरण में न्याय की आकांक्षा में पहुंचा है। ईश्वर के समक्ष अपने परिचय को रखते हुए बताता है कि वह पृथ्वी का सबसे प्राचीन नागरिक है :

प्रभु,/मैं-पानी-पृथ्वी का/प्राचीनतम नागरिक[1]

एक तरह से अपने महत्त्व की और संकेत कर रहा है कि यदि वह नहीं होता तो धरती पर जीवन कहां से आता। इस भागदौड़ और आपाधापी भरे समय में जबकि तमाम सुख-सुविधाओं से लैस मनुष्य को ही किसी के दुख-दर्द से कोई मतलब नहीं है, किसी की व्यथा कथा सुनने का समय नहीं है, ऐसे में पानी को संदेह है कि ईश्वर के पास भी उसकी प्रार्थना सुनने का समय होगा या नहीं इसलिए अपनी बात कहने से पहले प्रभु से अनुमति भी लेना चाहता है :

आपसे कुछ कहने की अनुमति चाहता हूं/यदि समय हो तो पिछले एक दिन का / हिसाब दूं आपको/[2]

प्रश्न उठता है कि पानी को प्रभु की शरण में जाने की नौबत क्यों आन पड़ी जबकि, ऐसा भी नहीं है कि जल संरक्षण के लिए सरकारी और गैर सरकारी स्तर पर कोई योजना न बनाई गई हो या पर्यावरणविदों ने इस समस्या पर विचार न किया हो? पर कहीं ना कहीं ऐसा लगता है कि मानो पानी का इन सभी संस्थाओं से विश्वास सा उठ गया है; जैसे उसे अब किसी से कोई उम्मीद ही नहीं है; इसीलिए वह ईश्वर का द्वार खटखटाता है, वह भी डरते डरते। तभी तो प्रभु से आज्ञा लेकर वह अपने सिर्फ एक दिन का ही हिसाब-किताब देना चाहता है। वह किसी की शिकायत करने या किसी को सजा दिलाने नहीं आया। वह सीधे-सरल शब्दों में बयान करता है कि उसके तट पर बहुत दिनों के बाद एक चील आई। अब चीलें बहुत कम क्यों नजर आती हैं? इसके उत्तर से अनभिज्ञ वह प्रभु से ही उनकी कम होती संख्या पर सवाल करता है :

प्रभु कितनी कम चीलें/ दिखती हैं आजकल/आपको पता तो होगा/कहां गई वे!"[3]

विस्मय और भोलेपन से पूछा गया यह प्रश्न सीधे तौर पर आज के तथाकथित सभ्य समाज के एक-एक प्राणी पर, उसकी शिक्षा, ज्ञान के खोखलेपन पर व्यंग्य करता है कि माता भूमि: पुत्रो अहम् पृथिव्या: (अथर्ववेद, बारहवां कांड, प्रथम सूक्त) कहने वाले धरती पुत्र, धरती और उसकी अन्य संतानों के प्रति इतने संवेदनहीन कैसे हो सकते हैं? उनके स्वार्थ इतने व्यापक और महत्त्वपूर्ण क्यों हैं कि उनकी पूर्ति के लिए प्रकृति के नियमों को भी ताक पर रख दिया जाता है। प्रकृति के समस्त उपादान आज भी अपने नैसर्गिक गुणों के साथ कालचक्र में विद्यमान हैं, प्रवाहमान हैं, फिर वह चाहे हवा-पानी हो, पेड़-पौधे हों या समस्त छोटे-बड़े जीव-जंतु या पशु-पक्षी। किसी ने भी अपने सहज प्राकृतिक गुण और व्यवहार को नहीं छोड़ा है फिर, मनुष्य ईश्वर की श्रेष्ठ कृति जिसने आदिम युग से अब तक विकास के नित नए पायदान पार कर ब्रह्मांड के रहस्यों को ज्ञात करने के लिए अंतरिक्ष में ऊंची-ऊंची उड़ानें भर दी हैं, उसके रहते हुए यदि चीलों की संख्या कम हो रही है तो ऐसे विकास का क्या प्रयोजन? वस्तुत: चील प्रतीक है उन सब विलुप्त हो चुके और विलुप्त प्रायः प्रजातियों का जो मानव विकास की भूख के सामने दम तोड़ चुकी है या दम तोड़ने के लिए मजबूर है। पानी के

संपर्क में आने वालों के सुख-दुख किस तरह से उसके निजी सुख-दुख बन जाते हैं इसका बड़ा सुंदर, सजीव, मनोहारी बिंब केदारनाथ जी ने खींचा है :

"पहले चौंक कर उसने इधर उधर देखा/फिर अपनी लंबी चोच गड़ा दी मेरे सीने में/और यह मुझे अच्छा लगता रहा प्रभु/लगता रहा जैसे घूंट घूंट/मेरा जन्मांतर हो रहा है एक चील के कंठ में/कंठ से रक्त में/रक्त से फिर एक नई चील में"[4]

उपर्युक्त पंक्तियों के माध्यम से कवि यह संदेश देता है कि प्रकृति के विविध रूपों का अस्तित्व उनकी पारस्परिकता के कारण हैं।

पृथ्वी पर जीवन के आधार पेड़, पौधे, जल, वायु आदि परहित के लिए ही बने हैं। तुलसीदास ने भी "परहित सरिस धर्म नहिं भाई पर पीड़ा सम नहीं अघ माई" कहकर रामचरितमानस में परहित की महत्ता को प्रतिपादित किया है। प्रत्येक प्यासा 'चिरई-चुरूंग', 'मानुष-अमानुष' सभी अपनी प्यास बुझाने पानी के पास आते हैं। इसी में पानी को अपनी सार्थकता, साभिप्रायता नजर आती है और चरम आनंद की प्राप्ति भी। अन्य जीवों द्वारा ग्रहण की गई उसकी एक-एक एक घूंट उसे अपने पुनर्जीवन-सी प्रतीत होती है। पानी की आपबीती में दुखद मोड़ उस वक्त आता है जब उसके तट पर एक चरवाहा प्यास से बेहाल अपनी प्यास बुझाने के लिए आता है। चरवाहा इतना प्यासा था कि पानी उसकी प्यास की तड़प को समझाने में स्वयं को असमर्थ पाता है :

"अब कैसे बताऊं प्रभु-क्योंकि आपको तो/ प्यास कभी लगती नहीं/कि वह कितना प्यासा था"[5]

चरवाहा प्यास की हड़बड़ी में चुल्लू भर पानी उठाता है, उसे मुंह तक लाते लाते अचानक उस में कुछ दिख जाने पर वह हिल जाता है, बिदक जाता है और पूरे के पूरे पानी को जमीन पर गिरा देता है। पानी इसके लिए बहुत शर्मिंदा होता है। उसके लिए यह एक दुखद हादसा था। दुखद हादसा इसलिए कि पानी की प्रयोजनीयता पर चरवाहे ने प्रश्न खड़ा कर उसे व्यर्थ घोषित कर दिया। जीवनदायी पानी के इतिहास का यह काला दिन था। चील के समान सवाल उसके अस्तित्व का था, उसकी अस्मिता का था। तो क्या भारतीय संस्कृति में पूजनीय जल अब गंदला हो गया? प्रदूषित हो गया था? पीने योग्य नहीं रह गया था जो चरवाहे ने उसे फेंक दिया? क्या अब पानी के सामने अपनी स्वच्छता, निर्मलता, पवित्रता को अक्षुण्ण बनाए रखने का प्रश्न खड़ा हो गया था? वस्तुत: बड़े-बड़े कारखानों और फैक्ट्रियों से निकलने वाले जहरीले रसायनों, दूषित नालों ने

नदियों के जल को प्रदूषित कर दिया है। गंगा-यमुना सहित अनेक नदियों के पानी की यही कहानी है :

समय ऐसा ही कुछ ऐसा है/ कि पानी नदी में हो/ या किसी चेहरे पर/ झांक कर देखो तो तल में कचरा कहीं दिख ही जाता है"[6]

विकास के नाम पर बढ़ते औद्योगीकरण, शहरीकरण, आधुनिक जीवन शैली, समुचित जल-प्रबंधन का अभाव जैसे अनेक कारणों से जहां एक ओर पानी के प्राकृतिक स्रोत कम होते जा रहे हैं वहीं दूसरी ओर स्वच्छ पानी का गंभीर संकट खड़ा हो गया है। नीति आयोग ने इस पर अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की है।

"रिपोर्ट में बताया गया है कि वर्ष 2030 तक देश की 40% आबादी के पास पीने का पानी नहीं होगा.... भारत में हर साल दो लाख लोग साफ पानी नहीं मिलने की वजह से मर जाते हैं...अगले 11 सालों में देश के 60 करोड़ से ज्यादा लोगों को पीने का पानी मिलना मुश्किल हो जाएगा।"[7]

पीने के साफ पानी की समस्या से भारत ही नहीं अपितु पूरा विश्व जूझ रहा है। भविष्य में यह संकट और भी अधिक गंभीर हो जाएगा। "यूनाइटेड नेशंस की रिपोर्ट के अनुसार हर रोज 200 करोड़ से अधिक लोगों को स्वच्छ जल नहीं मिल पाता है।... दुनिया भर में तेजी से घट रहे स्वच्छ जल के कारण हर तीसरा शख्स दूषित पानी पीने के लिए मजबूर है। रिपोर्ट के अनुसार 2050 तक विश्व की आधी आबादी पेयजल के गंभीर खतरे से जूझेगी। जबकि अगले 30 वर्षों में 5 अरब से ज्यादा लोग ऐसे स्थानों में रह रहे होंगे जहां जल संकट होगा या शुद्ध पेयजल की उपलब्धता कम होगी।"[8]

लगता है, इसीलिए अपने अस्तित्व पर आए गंभीर संकट के कारण पानी प्रभु से गुहार लगाता है :

"पर यहां पृथ्वी पर मैं/ यानी आपका मुंह लगा पानी/ अब दुर्लभ होने के कगार तक पहुंच चुका है/"पर चिंता की कोई बात नहीं/ यह बाजारों का समय है/ और वहां किसी रहस्य में स्रोत से/ मैं हमेशा मौजूद हूं/ पर अपराध क्षमा हो प्रभु और यदि मैं झूठ बोलूं/ तो जलकर हो जाऊंगा राख/ कहते हैं इसमें-आपकी भी सहमति है"[9]

कवि ने बड़ी सहजता से चीलों के अस्तित्व से शुरू हुई आपबीती को पानी के अस्तित्व की मार्मिक व्यथा कथा तक पहुंचा दिया। हमारी पवित्र नदियों की उत्पत्ति की गाथाएं, उनकी महत्ता को रेखांकित करती हैं। देव नदी गंगा किन भागीरथ प्रयत्नों से देवलोक से भूलोक पर अवतरित हुई, उसे कौन नहीं जानता? जिसके उद्गम स्थल हमारे पवित्र तीर्थ हैं, उसी गंगा को मनुष्य ने अपने व्यावसायिक, व्यापारिक हितों और व्यक्तिगत स्वार्थ के चलते प्रदूषित कर दिया है तथा उसे विलुप्त होने के कगार तक पहुंचा दिया है। गंगा के स्वच्छता अभियान के नाम पर करोड़ों रुपए परियोजनाओं की भेंट चढ़ चुके हैं पर, कोई कारगर व सुखद परिणाम नजर नहीं आया। कितना बड़ा व्यंग्य है कि प्रभु का मुंह लगा पानी धरती पर अब दुर्लभ होने वाला है! बड़े आश्चर्य की बात है कि बाजारों में बोतलबंद पानी की भरमार है! जिस बाजार ने पानी के अस्तित्व पर सवाल खड़े कर दिए हैं वही बाजार पानी की भरमार लिए खड़ा है, कितना हास्यास्पद है! पानी को पहले दूषित किया जाता है फिर, स्वच्छ पानी का प्रोपेगैंडा कर उसे बोतलबंद कर स्वच्छता, निर्मलता और पवित्रता के नाम पर बेचा जाता है! कहां से आता है इतना पानी? जब पाठक इस सवाल की जड़ तक पहुंचता है तो, सामने आता है यह कड़वा सच _ "आज के उपभोक्तावादी समय में बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने अपने मुनाफे की रणनीति के चलते जल-जंगल-जमीन को हड़प लिया है और अब उसी के उत्पाद बनाकर बेच रहे हैं। वह हवा-पानी सभी को अपने कब्जे में लेकर उन्हें जन-सामान्य से ही नहीं जीव -जंतुओं तक

से छीन लेना चाहते हैं। मूल निवासी मरें या जिएं _ इससे उन्हें कोई मतलब न था और न है। यही तो है भूमंडलीकरण। सत्ता अपने लालच में सब कुछ कार्पोरेट जगत के हाथों सौंपती चली जा रही है ।आज पर्यावरण की चर्चा बहुत है। उसके संरक्षण की चिंता भी विश्वव्यापी है, पर बड़ी शक्तियों और व्यवस्थाओं को इसे लेकर कोई खास फिक्र नहीं दिखाई देती।"[10]

पानी की विलुप्ति का रहस्य तब और भी गहरा जाता है जब पानी अपनी शक की सुई को एकबारगी भगवान की ओर ही घुमा देता है। वह अपनी इस हिमाकत के लिए क्षमा याचना भी मांगता है। पर्यावरण पर केदारनाथ सिंह की संवेदनशीलता और गहन चिंतन का परिणाम है कि 'पानी की प्रार्थना' के माध्यम से कवि ने पानी के संकट की गुत्थी को सुलझाने के क्रम में सत्ता, राजनीति और धर्म के गठजोड़ को एक साथ अपने निशाने पर लेकर आम जनता, सरकार, व्यवस्था, कार्पोरेट जगत और धर्म के ठेकेदार सभी की जिम्मेदारी तय करते हुए पानी के अस्तित्व को पृथ्वी और पृथ्वी वासियों के अस्तित्व के साथ बखूबी जोड़ा है।

संदर्भ सूची:

1. सिंह केदारनाथ (2005) ताल्सताय और साइकिल राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
2. वही
3. वही
4. वही
5. वही
6. वही
7. जी न्यूज डेस्क Sat 22 June 2019_12:26 am, Zee news.India.com
8. www.jagran.com 22 Mar.2021
9. सिंह केदारनाथ (2005) ताल्सताय और साइकिल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
10. हरिमोहन शर्मा, 'केदारनाथ सिंह की कुछ कविताएं', वागर्थ http://vagarth.bhartiybhashparishad.org/kedarnath- singh- kii- kavitaen/